गुणस्थान

गुणजीवमार्गणास्थानानि प्रत्येकं चतुर्दश ।।२४।।

गुणस्थान, जीव समास, और मार्गणा प्रत्येक के चौदह-चौदह प्रकार हैं।।२४।।

गुणस्थान का अर्थ

मोह और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के निमित्त से उत्पन्न जीव के अन्तरंग परिणामों की तरतमता को गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान आत्मिक गुणों के विकास की क्रमिक अवस्थाओं का द्योतक है। जीव के परिणाम सदा एक से नहीं रहते। मोह और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के कारण जीव के अन्तरंग परिणामों में प्रतिक्षण उतार-चढ़ाव होता रहता है। गुणस्थान आत्म-परिणामों में होनेवाले इन उतार-चढ़ावों का बोध कराता है। गुणस्थान जीव के मोह और निर्मोह दशा की भी व्याख्या करता है। यह संसार और मोक्ष के अन्तर को स्पष्ट करता है। गुणस्थानों के आधार पर जीवों के बन्ध और अबन्ध का भी पता चलता है। गुणस्थान आत्म-विकास का दिग्दर्शक है।

जैनदर्शन के अनुसार जीव अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति स्वरूपी है, किन्तु अनादि कर्मों से बद्ध होने के कारण उसकी वे शक्तियाँ प्रकट नहीं हो पाती। कर्मों का आवरण उसके मूल रूप को आवृत या विकृत कर लेता है। जितनी-जितनी कर्म आवरण की घटाएँ सघन होती जाती है, उतनी-उतनी जीव शक्तियों का प्रकाश कम होता जाता है तथा इसके विपरीत जैसे-जैसे कर्म-पटल विरल होते हैं, वैसे-वैसे आत्मा की शक्ति प्रकट होती जाती है। जीव के परिणामों के उतार-चढ़ाव के अनुसार आत्मिक शक्तियों का विकास और ह्रास होता रहता है। यूँ तो परिणामों के उतार-चढ़ाव की अपेक्षा आत्मिक विकास के आरोहण और अवरोहण के अनन्त विकल्प सम्भव हैं, फिर भी परिणामों की उत्कृष्टता और जघन्यता की अपेक्षा, उन्हें चौदह भूमिकाओं में विभक्त किया गया है, जो निम्नलिखित हैं–

Scanned by CamScanner

गुणस्थान के भेद

१. मिथ्यादृष्टि	८. अपूर्वकरण
२. सासादन	९. अनिवृत्तिकरण
३. सम्यक्-मिथ्यादृष्टि	१०. सूक्ष्म-साम्पराय
४. असंयत सम्यग्दृष्टि	११. उपशान्तमोह
५. संयतासंयत	१२. क्षीणमोह- वीतराग छद्मस्थ
६. प्रमत्त-संयत	१३. सयोग-केवली
७. अप्रमत्त-संयत	१४. अयोग-केवली

यहाँ सम्यग्दृष्टि के साथ लगा असंयत विशेषण अपने से नीचे के सभी गुणस्थानों में असंयतत्व व्यक्त करता है, क्योंकि वह अन्त दीपक है। इससे ऊपर के गुणस्थानों से संयम की यात्रा का सूत्रपात होता है। सम्यग्दृष्टि पद ऊपर के सभी गुणस्थानों में नदी-प्रवाह की तरह अनुवृत्ति को प्राप्त है अर्थात् आगे के सभी गुणस्थानों में सम्यग्दर्शन पाया जाता है। छठे गुणस्थान में प्रयुक्त 'प्रमत्त' विशेषण अपने साथ नीचे के सभी गुणस्थानों में प्रमाद के अस्तित्व का द्योतन करता है तथा उसके आगे जुड़े 'संयत' शब्द से यह सूचित होता है कि ऊपर के सभी गुणस्थान संयतों के ही होते हैं। बारहवें गुणस्थान के साथ जुड़ा 'छद्मस्थ' शब्द भी अन्त-दीपक है, क्योंकि आवरण कर्मों के अभाव हो जाने से उससे आगे की भूमिकाओं में छद्मस्थता नहीं रहती।

गुणस्थानों के उक्त नामों का कारण मोहनीय कर्म और योग है। आदि के चार गुणस्थानों का सम्बन्ध हमारी दृष्टि/श्रद्धा से है, जो कि दर्शन मोहनीय कर्म के निमित्त से होते हैं। पंचमादि गुणस्थानों का सम्बन्ध जीव के चारित्रिक विकास से है, वे चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम, क्षय और उपशम के निमित्त से उत्पन्न होते हैं। तेरहवाँ और चौदहवाँ गुणस्थान योग निमित्तक है।

चौदह गुणस्थानों का स्वरूप इस प्रकार है–

१. मिथ्यात्व- 'मिथ्या' अर्थात् विपरीत श्रद्धान से युक्त गुणस्थान को मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं। मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से यह गुणस्थान बनता है। इस गुणस्थानवाले जीव मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। इन्हें तत्त्व-कुतत्त्व का विवेक नहीं रहता। ऐसे जीव शरीर में ही आत्मा की भ्रान्ति बनाये रखते हैं। जिस प्रकार पित्तज्वर से ग्रसित रोगी को मधुर औषधि भी अच्छी नहीं लगती, वैसे ही मिथ्यादृष्टियों को तत्त्व की बात रुचिकर नहीं लगती। यह जीव की

Scanned by CamScanner

अधस्तम अवस्था है। संसार के बहुसंख्यक जीव इसी गुणस्थान में रहते हैं।

२. सासादन- उपशम सम्यक्त्व से परिपतित होने और मिथ्यात्व को प्राप्त होने से पूर्व (बीच) की स्थिति को सासादन गुणस्थान कहते हैं। यह जीव की पतनोन्मुख अवस्था है। इस गुणस्थानवाला अगले ही क्षण मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है। इसका काल जघन्यत: एक समय और उत्कृष्टत: छह आवली मात्र है।

३. सम्यक्-मिथ्यादृष्टि- जिस गुणस्थान में सम्यक् और मिथ्यारूप मिश्रित श्रद्धान पाया जाए उसे सम्यक्-मिथ्यादृष्टि कहते हैं। सम्यक्त्व से गिरते समय अथवा मिथ्यात्व से चढ़ते समय एक अन्तर्मुहूर्त के लिए इस अवस्था का वेदन सम्भव है। सम्यक्-मिथ्यात्व कर्म के उदय से यह गुणस्थान बनता है। श्रद्धान और अश्रद्धानात्मक भाव युगपत् रहने के कारण इसे मिश्र गुणस्थान भी कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीवों की निम्न विशेषताएँ हैं—

- श्रद्धान और अश्रद्धान युगपत् विद्यमान रहते हैं।
- इस गुणस्थान से जीव न तो 'सकल संयम' प्राप्त कर सकता है और न ही 'देश संयम'।
- इस गुणस्थान में जीवों की मृत्यु नहीं होती। सम्यक्त्व या मिथ्यात्व रूप परिणामों के होने पर पहला या चौथा गुणस्थान प्राप्त करके ही मृत्यु होती है।
- इस गुणस्थान में आयु कर्म का बन्ध नहीं होता और मारणान्तिक समुद्घात[1] भी नहीं होता।

४. असंयत सम्यग्दृष्टि- संयम रहित सम्यग्दृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीव दर्शनमोहनीय कर्म का अभाव हो जाने से यद्यपि सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं, किन्तु चारित्रमोह के उदयवश संयम अंगीकार नहीं कर पाते हैं। फिर भी दृष्टि में समीचीनता आ जाने के कारण सम्यग्दृष्टि के सभी आवश्यक गुण उनमें प्रकट हो जाते हैं।

५. संयतासंयत- जिस गुणस्थान में सम्यग्दर्शन के साथ पाँच पापों का स्थूल रूप से त्याग होता है, उसे संयतासंयत गुणस्थान कहते हैं। विरताविरत, संयतासंयत अथवा देशविरत इस गुणस्थान के नामान्तर हैं। इस अवस्था के जीव चूँकि स्थूल पापों से विरक्त रहते हैं, अत: संयत अथवा विरत तथा सूक्ष्म पापों का त्याग न कर पाने के कारण असंयत अथवा अविरत कहलाते हैं। इसी अपेक्षा से इस गुणस्थान में संयतासंयत अथवा विरताविरत रूप परिणाम युगपत् पाये जाते हैं।

६. प्रमत्त संयत- प्रमाद सहित महाव्रती साधु को प्रमत्त संयत कहते

---

१. समुद्घात के स्वरूप के लिए देखें परिशिष्ट

Scanned by CamScanner

हैं। पाँचों पापों का परिपूर्ण त्याग होने से संयत तथा प्रमाद सहित होने से इन्हें प्रमत्त कहते हैं। यहाँ प्रमाद का सबसे हल्का रूप होता है। यह प्रमाद संज्वलन कषाय की तीव्रता में होता है।

७. अप्रमत्त संयत- प्रमाद रहित साधु अप्रमत्त संयत कहलाते हैं। इसके दो भेद हैं– स्वस्थान अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त।

स्वस्थान अप्रमत्त- जो प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्था में डोलते रहें, वे स्वस्थान अप्रमत्त हैं। जैसे तरंगायित जल पर पड़ा लकड़ी का टुकड़ा ऊपर-नीचे होता रहता है, वैसे ही प्रमादजन्य संस्कारों के कारण इनकी नैय्या छठवें-सातवें गुणस्थान में डोलते रहती है।

सातिशय अप्रमत्त- प्रमाद पर पूर्ण विजय प्राप्त कर स्थायी रूप से अप्रमत्त अवस्था प्राप्त करनेवाले साधक सातिशय अप्रमत हैं। इस अवस्था को प्राप्त करनेवाले साधक आठवें गुणस्थान के अभिमुख हो जाते हैं।

द्विविध श्रेणी- सातिशय अप्रमत्त अवस्था प्राप्त करने के उपरान्त साधक चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय के लिए विशेष प्रकार का आरोहण करता है। जैन दर्शन में इसे 'श्रेणी' के नाम से जाना जाता है। 'श्रेणी' का अर्थ है–चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय के लिए किया जानेवाला आरोहण। श्रेणी सीढ़ी का वाचक है, जिस पर आरूढ़ हो साधक कर्म विनाश का विशेष उपक्रम प्रारम्भ करता है। श्रेणी दो प्रकार की है– उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी।

उपशम-श्रेणी- चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम के लिए किया जाने वाला आरोहण उपशमश्रेणी है। उपशमश्रेणी में साधक मोहनीय कर्म का समूल नाश नहीं कर पाता, अपितु उसे दमित करता हुआ अर्थात् दबाता हुआ आगे बढ़ता जाता है। जिस प्रकार शत्रुसेना को खदेड़कर की गयी विजय यात्रा, राज्य के लिए अहितकर होती है, क्योंकि वह कभी भी समय पाकर राज्य पर पुनः आक्रमण कर सकता है, उसी प्रकार इस विधि से प्रशमावस्था को प्राप्त कर्म-शक्ति कभी भी समय पाकर आत्मा का अहित कर सकती है। जिस प्रकार गँदले जल में फिटकरी आदि कोई केमिकल डाल देने पर उसकी गंदगी नीचे बैठ जाती है तथा जल अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल हो जाता है, लेकिन बर्तन में थोड़ा भी हलन-चलन होते ही वह गन्दगी पुनः उभरकर आ जाती है, उसी प्रकार कर्मों के उपशम जन्य अल्पकालिक विशुद्धि के कारण आत्मा में स्वच्छता तो आ जाती है, लेकिन मोह का उदय हो जाने के कारण अपनी उपरिम भूमिका से फिसलकर जीव नीचे गिर जाता है। उपशम श्रेणीवाले जीव अपने कर्मोन्मूलन के पुरुषार्थ को

Scanned by CamScanner

पूर्ण कर अन्तिम सोपान तक नहीं ले जा सकते। ग्यारहवें गुणस्थान तक जाकर कर्मों के पुनः प्रकट हो जाने से अनिवार्यतः उनका पुनः पतन हो जाता है।

क्षपक श्रेणी- क्षपक श्रेणी का अर्थ है— चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय के लिए किया जानेवाला आरोहण।

जो साधक अपनी विशुद्धि के बल पर चारित्र मोहनीय कर्म का समूल विच्छेद करते हुए आगे बढ़ते हैं, वे क्षपक श्रेणीवाले कहलाते हैं। इसमें कर्म शत्रुओं का उपशम नहीं होता, अपितु समूल विध्वंस कर दिया जाता है। इसी कारण ये पुनः जागृत नहीं हो पाते। इस श्रेणीवाले साधकों का अधःपतन नहीं होता। क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होनेवाले साधक अपना आत्मिक विकास करते हुए समस्त कर्मों का समूलनाश कर अन्तिम सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं।

दोनों ही श्रेणियाँ आठवें गुणस्थान से प्रारम्भ होती हैं। उपशम-श्रेणी में आरूढ़ साधक ग्याहवें गुणस्थान तक जाकर नीचे गिर जाते हैं, जबकि क्षपक श्रेणी में आरूढ़-साधक दसवें गुणस्थान से सीधे बारहवें गुणस्थान को प्राप्त करते हुए मुक्ति की यात्रा को पूर्ण करते हैं।

८. अपूर्व करण- जिस गुणस्थान में अपूर्व अर्थात् पूर्व में अननुभूत आत्मशुद्धि का अनुभव होता है, वह अपूर्वकरण गुणस्थान है। यह गुणस्थान सातिशय अप्रमत्त अवस्था के बाद होता है। चारित्र मोहनीय के क्षय या उपशम का विशेष उपक्रम यहीं से प्रारम्भ होता है।

९. अनिवृत्तिकरण- जिस गुणस्थान में स्थूल मोहनीय कर्म का क्षय या उपशम होता है, उसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में आत्मशुद्धि इतनी बढ़ जाती है कि शरीरगत भेद होने पर भी समान कालवर्ती विभिन्न साधकों के परिणामों में सदृशता बनी रहती है। परिणामगत निवृत्ति अर्थात् भेद न होने के कारण ही इसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

१०. सूक्ष्म साम्पराय- जिस गुणस्थान में संज्वलन लोभ कषाय का अत्यन्त सूक्ष्म उदय होता है, उसे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते हैं। नवमें गुणस्थान में संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, के स्थूल रूप का क्षय अथवा उपशम होने पर इस गुणस्थान की प्राप्ति होती है। इस गुणस्थान के अन्तिम समय में उक्त सूक्ष्म लोभ कषाय का भी क्षय या उपशम हो जाता है।

११. उपशान्त मोह- समस्त मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले गुणस्थान को उपशान्त मोह गुणस्थान कहते हैं।

१२. क्षीण मोह- समस्त मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न आत्मा का

Scanned by CamScanner

विशुद्ध परिणाम क्षीण मोह कहलाता है। दसवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का क्षय करने वाले साधक सीधे इसी गुणस्थान में आते हैं। इस गुणस्थान से अधःपतन नहीं होता। शेष घातिया कर्मों का क्षय भी इसी गुणस्थान में होता है।

१३. सयोग केवली- योग सहित केवली के गुणस्थान को सयोग केवली कहते हैं। यह गुणस्थान घातिया कर्मों के समूल क्षय से प्राप्त होता है। सयोग केवली ही तीर्थङ्कर, अरिहंत या परमात्मा कहलाते हैं।

१४. अयोग केवली- योगातीत केवली के गुणस्थान को अयोग केवली कहते हैं। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में विशुद्ध शुक्ल ध्यान के बल से योगों का निरोध करने के उपरान्त यह गुणस्थान प्राप्त होता है। शेष अघातिया कर्मों के क्षयपूर्वक मोक्षोपलब्धि इसी गुणस्थान से होती है।

गुणस्थानों से आरोह-अवरोह का क्रम- इस प्रकार इन चौदह गुणस्थानों से होता हुआ जीव अपनी आत्म विकास की यात्रा को पूर्ण करता है। आत्मिक परिणति से जुड़े होने के कारण गुणस्थान अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। हम अपनी बुद्धि से इन गुणस्थानों को पहिचान नहीं सकते। इन्हें तो अपने अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। इतना अवश्य है कि इन गुणस्थानों के प्राप्त होने पर कथित गुण हमारे आचरण में अवश्य आ जाते हैं। इन आचरणों के आधार पर ही गुणस्थानों का अनुमान लगाया जा सकता है। हमारे भावों के उतार-चढ़ाव के अनुरूप इनमें क्षण-क्षण में परिवर्तन होते रहते हैं। इनमें आरोहण एवं अवरोहण का भी एक निश्चित क्रम है जो इस प्रकार है—

क्रमांक	गुणस्थान	आरोहण	अवरोहण
१.	मिथ्यात्व	३,४,५,७	–
२.	सासादन	–	१
३.	सम्यक् मिथ्या-दृष्टि	४	१
४.	अविरत सम्यक्-दृष्टि	५,७	३,२,१
५.	संयातासंयत	७	४,३,२,१
६.	प्रमत्त-संयत	७	५,४,३,२,१
७.	अप्रमत्त-संयत	८	६, ४ (मरण की अपेक्षा)
८.	अपूर्वकरण	९	७, ४ (मरण की अपेक्षा)
९.	अनिवृत्तिकरण	१० (उपशम श्रेणी) ११ (क्षपक श्रेणी)	८,४ (मरण की अपेक्षा)
१०.	सूक्ष्म-साम्पराय	१२	९,४ (मरण की अपेक्षा)
११.	उपशान्त-मोह	–	१०, ४ (मरण की अपेक्षा)
१२.	क्षीण-मोह	१३	-
१३.	सयोग-केवली	१४	–
१४.	अयोग-केवली	मोक्ष	–

Scanned by CamScanner

गतियों की अपेक्षा गुणस्थान

नरक और देवगति के जीव प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान तक प्राप्त कर सकते हैं। उससे ऊपर के गुणस्थानों को प्राप्त करने की पात्रता उनमें नहीं रहती। तिर्यञ्चों में एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के एकमात्र प्रथम गुणस्थान होता है। मन का अभाव होने के कारण ये ऊपर के गुणस्थानों को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च देशसंयम प्राप्त कर सकते हैं, अतः उनमें प्रथम से पंचम गुणस्थान तक होता है। मनुष्य अपने आत्मा का परिपूर्ण विकास कर सकता है, अतः मनुष्यों में सभी गुणस्थान पाये जाते हैं। वर्तमान काल के भरत क्षेत्र के मनुष्य सप्तम गुणस्थान से ऊपर नहीं जाते, क्योंकि वर्तमान में उत्तम संहनन का अभाव है।

Scanned by CamScanner